राजसी स्पर्शा

ओ री स्पर्शा !
तेरा वेदन
सम्वेदन
क्या सो गया है ?
क्या खो गया है?
आज तुझे
हो क्या गया है ?

तू वृत्तिवाली राजसी
उल्लास हास की आली
रसीली मतवाली
विलासिता राजसी
अनुभव करने वाली

आज विराज रही
एक कोने में
नाराज सी
विश्व उपेक्षिता
सहज समाधिलीन
मुनि महाराज सी
विषय-विमुखा

विरागिनी विपरी...
...री...

अवनीता
स्वयं को किया
अनुपम उत्तम
भाव मालाओं से
गिरि उन्नीता
नीता

विलोकिनी
हल्की सी
गंभीरा भय भीता
भव से है ?
क्या मुझसे है ?
किससे है?

ऐसी समपृच्छना वा...
उससे पूर्व ही
अश्रुतपूर्वा
अपूर्व ध्वनि
तरंग क्रम से
ध्वनित/निनादित हुई
आतम के गूढ़ निगूढ़...

किन्तु
अनुभूत हुआ कि
वह मौन
और गहन गहनतम

होता जा रहा है
यथार्थ में
वह ध्वनि नहीं है
औ किसी परिचित से
प्रेषित/संप्रेषित
संप्रेषण शक्ति भी नहीं है
बहिर्जगत का संबंध
टूट जाने से
पदार्थ का ही सहज परिणमन
निरन्तर जो हो रहा है

केवल अनधिगत का
अधिगमन हुआ
कर्कश कठोरता से
मखमल कोमलता से

लघुता से क्या ?
गुरुता से क्या?

स्निग्ध स्नहिल
रूक्ष रेतिल
रे तिल !

चंदन चन्दर शीतल क्या ?
धू धू करती ज्वाला से क्या?
कुन्दन कुंकुम से क्या?
दल दल पंकिल से क्या?

मैं स्पर्शा
स्पर्शातीता तर्षातीता
हर्षातीता हो
''अलिंग गहण''
लिंगातीत
गाढ़ालिंगित होकर भी
स्पर्शतीता हूँ !

यह भाव जब ध्वनित हुआ
तब विदित हुआ कि
मैं भी अस्पर्श हूँ
अब किसको छू सकता
कैसा कौन मुझे
छू सकता

तू ही फूल बन जा
तू ही शूल बन जा
तेरी छुवन से
भीतरी चुभन से
मेरे प्रतिप्रदेश
स्पर्शित हों
हर्षित हों
ओ री स्पर्शा !!

□□□

श्राव्य से परे

धनी जनों
धी धनों
औ
तपोधनों
के मुख से
अपनी प्रशंसा के
सरस श्राव्य श्रुतिमधुर
गीत सुन
हृदय में
गद्‌गद हो
कभी भूल
स्वप्न में भी
कठपुतली-सा
नर्तक बन
करे न नर्तन
टुन टुन टुन.. टुन
यह मेरा
संयमित
नियंत्रित
समाधितंत्रित
भावित मन
हे! अमन!
हे! चमन!

□□□

ओ नासा

चाँदी की चूरणी छिड़की
चाँदनी की रात है
चिदानन्द गंध से
घम घम गंधित
सौम्य सुगंधित
उपवन की बात है
जिसमें
सहज सुखासीन
निज में लीन
यथाजात
जिसकी गात है
सुगन्ध निधि
निशिगंधा
अन्य दुर्लभा
अपनी सुरभि से
वातावरण के कण कण को
सुवासित सुरभित करती
निवेदन करती
आज विलम्ब हुआ
अपराध क्षम्य हो !
ओ री नासा!

नैवेद्य प्रस्तुत है
पारिजात स्तुत है
स्वीकृत हो !
अनुगृहीत करो
उत्तर के रूप में

बोध भरित
सम्बोधन
मौन भावों से
कुछ भाव
अभिव्यंजित हुए

माना तू गंधवती है किन्तु
इस ज्ञान कली में भी
सुगंधि फूटी है

फूली महक रही है
कि
तू केवल ज्ञेया भोग्या
'गंधवती' है
'गंधमती' नहीं

मै स्वयं गंधमती
तू बोध विहीना
क्षणिका
नहीं जानती
सुखमय जीवन जीना
पुरुष के साथ ऐक्य होकर
सुरभिका
दुरभिका

सृजन कहाँ होता है
स्रोत किस निगूढ में है
इसका स्रजक/जनक
कौन है वह ?

मौन कार्यरत है
वही ज्ञातव्य है
यही प्राप्तव्य है

इसीलिए
मौन वेषिका
बन गवेषिका
अनिमेषिका
अज्ञात पुरुष की गवेषणा को
सफलता की पूरी आशा ही
नहीं
अपितु पूर्ण विश्वस्त हो
हुई हूँ उद्यमशीला मैं

इसी बीच !
दाहिनी ओर से
लचक चाल की
मदन मोहिनी
रति सी
मृदुल मालती

मुख खोल
कुछ बोल बोलती
अधर डोलती
कि

नामानुसार काम
कर रही है आज !
इच्छा वांछा तृष्णा
आशा की छाया तक
नहीं तेरी नासा की अनी पर
विराग की साक्षात् प्रतिमा सी

ओ नासा!
मतकर मुझे
निराश उदास
तनिक सा पल भर
कपाट खोल
मृदु बोल बोल

परम पुरूष महादेव को
तृप्त परितृप्त करूँ
यह दुर्लभ सुरभि
श्रद्धा समेत
लाई हूँ

ये कई बार
विगत में
मेरी सुगंध सुरभि में
स्नपित स्नात हुए हैं
शान्त हुए हैं

नितान्त! प्रभु!
संक्षेप समास में
सांकेतिक ध्वनि
ध्वनित हुई

[illegible] है
[illegible] है
[illegible] में
[illegible] मेरी भी
[illegible] नहीं अपेक्षा
[illegible] अपेक्षित
[illegible] स्वावलम्ब
[illegible]
[illegible]

जिस अनुभव के धरातल पर
प्रतिपल
फलित हो रहा है
बहना बहना बहना
वह ना वह ना
वह ना

[illegible] नूतन होकर भी
[illegible]
[illegible]
[illegible]

भेद नहीं अभेद
वेद नहीं अवेद
खण्ड नहीं/द्वैत नहीं
अखण्ड अद्वैत

अविभाज्य स्वराज्य
चल रहा है स्वयं
किसी इतर चालक से
चालित नहीं

गंध गंध गंध !
केवल गंध !
सुगंध कहना भी
अभिशाप है
पाप है अब

अनुतापित करना है
स्वयं को वृथा
संज्ञा बन कर
सूँघना नहीं
मूर्छित ऊँघना नहीं

प्रज्ञा बनकर
सूँघना ही
वरदान !

मतिमती
मैं नासिका
ध्रुव गुण की
उपासिका
प्रकाश की छया
प्रकाशिका

न दुर्गंध से
न सुगंध से
प्रभाविता
भाविता

गंध से !
गंधवती
गंधमती
गंधातीता
बंधातीता
मेरा भोक्ता
गंध से परे
अगंध पुरुष ।

मैं भोग्या योग्या
कामपुरुष की
आई हूँ
आशातीता
मैं नासा

चरणों में
मात्र मिले बस!
चिरवासा
सहवासा !

□□□

सब में वही मैं

अनुचरों
सहचरों
औ
अग्रेचरों
के विकासोन्मुखी
विविध गुणों की
सुरभि सुगंधि की
जो अपनी धीमी गति से
सुगंधित करती
वातावरण को
फैल रही
उपहासिका
नहीं बने
किन्तु
सुगंधि को
सूँघती हुई
पूर्ण रूपेण
सादर/सविनय
अपने चारों ओर
बिखरे हुए
घिरे हुए
काँटों को भी
खुल खिल हँसने
जगने

मृदुतम बनने की
प्रेरणा देती हुई
सकल दलों सहित
उत्फुल्ल फूलों सी
फूला न समाये
यह मम नासिका
बने ध्रुव गुण उपासिका
ऐसी दो आसिका
गुणावभासिका
हे अविकल्पी
अमूर्त शिल्प के शिल्पी!

□□□

हुआ है जागरण

स्पर्श की स्थूल परिणति से
स्थिति से
औ इति से भी
बहुत दूर
ऊपर उठे
सूक्ष्मता में अवतरण
समावतरण
अपरिचित के परिचय का
अर्घावतरण
मौन एकान्त
विजन में
जाति जरा मरण
आवरण
करते है
निरावरण का अनावरण का
वरण
अनुसरण
स्वयं बन कर
शरण
आवरण की शरण का
अपहरण !

अकाय!
असहाय!
इस काय की छुवन में
अब नहीं आ सकते

मत आओ
कौन कहता कि आओ?
फिर भी कहाँ बसोगे?
कहाँ लसोगे?
अपने लावण्य लेकर
इसी भुवन में ना !

आनंदित
अभिनंदित
स्वतन्त्र स्वाश्रित
सौम्य सुगन्धित
चन्दन वन में
नन्दन वन में ना !

हे निरावरण!
हे अनावरण!
दुख निवारण कर दो

अकारण
इसने सावरण का
कर लिया है वरण

भूल से
उतावली के कारण
अनन्तकाल से
सहता आया
जनन जरा मरण

किन्तु अब सुकृत
हुआ है जागरण करके एकीकरण
त्रिकरण

कर रहा मात्र
आपके नामोच्चरण
होने तुम सा

निरा! निरामय
नीराग
निरावरण!

डुबो मत लगाओ डुबकी

अमृताक्षर

अनुभूति की अनन्त धरती पर, जो घटना घटित हुई, उसे आकार - प्रकार [illegible] मिला, मूर्तशब्दों का। नाम-करण हुआ 'डूबो मत लगाओ डुबकी' यह रचना [illegible] मूल, परम शान्त रस से सिंचित है, संपोषित हैं स्वयं ऊर्ध्वमुखी बनाने में [illegible] नाम ही नहीं, आधारशिला भी है।

यह सृजन सहज हुआ है। इसमें श्रमण ने परिश्रम का अनुभव नहीं किया। [illegible] न तो काव्यशास्त्री है, न अमा की रात्री; वह मात्र ऊर्ध्वमुखी यात्री है। [illegible] और इस सृजन का उपादान सहजशुद्ध चैतन्य की उपासना है।

सारभूत वस्तु को प्रकाशित करने, इसमें चमक है। निस्सारता को [illegible] करने, इसमें दमक है। और मुमुक्षुसाधक के श्वास-श्वास के तारों में सरगम [illegible] स्वयं गमक है। इसमें प्रदर्शन और दिग्दर्शन की गन्ध नहीं है, किन्तु [illegible] आत्मदर्शन की गन्ध महक रही है।

जहाँ तक कविता की बात है, वह संवेदनशील कवि - मानस में [illegible] उठती हुई सजीव भाव - तरंग है। उसका कोई रंग है न अंग। कविता [illegible] भाषा - परिभाषा तो होती नहीं। हाँ, उसकी अभिव्यक्ति हेतु भाषा का [illegible] अनिवार्य होता है। यथार्थ में कविता का सृजन अन्तर्जगत् की गहराई में ही [illegible] है।

किन्तु यदि कवि की काव्ययात्रा का सूत्रपात शब्दों से होता हो, और [illegible] विषयानुरंजन में; तो वह निश्चित ही स्वानुभव से एवं समरस सिंचित, [illegible] से वंचित है। शब्दानुगामिनी कविता में अननुभूत - जीवन, अनुभूत नहीं [illegible] पठन से मन भले ही परितृप्ति का अनुभव करे, परन्तु चेतना की प्यास [illegible] वह अभिभूत नहीं होती। ऐसी स्थिति में 'जहाँ न जाता रवि, वहाँ जाता [illegible]' यह लोकोक्ति भी अपूर्ण और औपचारिक ही सिद्ध होती है। इसमें मौलिकता [illegible] परिपूर्णता लाने 'जहाँ न जाता कवि, वहाँ जाता स्वानुभवी' इस कड़ी की [illegible] है।

एतावता इस वक्तव्य का यही मन्तव्य है, कि सविता एवं कविता से बढ़कर [illegible] ही मौलिक है, स्वभाव है। विकासोन्मुखी जीवन का यही उपादान है, यही [illegible] यही परम ध्येय है, यही परम ज्ञेय भी। इसलिए मुमुक्षु पाठकों से निवेदन [illegible] प्रस्तुत रचना में नहीं रचना है, परन्तु इस से परिसूचित भाव गांभीर्य में [illegible] अवगाहित होना है। फलस्वरूप विषयराग की 'ऊब' हाथ लगेगी और वीतराग '[illegible]' साथ चलेगी, आगामी अनन्तकाल तक धन्य।

यह सब स्व. वयोवृद्ध - तपोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य गुरुवर श्री ज्ञानसागरजी महाराज के प्रसाद का परिपाक है। परोक्ष रूप से उन्हीं के अभय चिन्ह - चिन्हित युगल कर - कमलों में 'डूबो मत लगाओ डुबकी' का समर्पण करता हुआ।

हिरण नदी का तीर

कुण्डलगिरि की छाँव।

गुरुचरणारविन्द चंचरीक

ॐ शुद्धात्मने नमः

ॐ निरंजनाय नमः

ॐ जिनाय नमः

ॐ निजाय नमः

(आचार्य श्री विद्यासागर

जी महाराज)

एक दृष्टि

'डूबो मत लगाओ डुबकी' आधुनिक कविताओं का एक ऐसा [illegible] है, जिसमें आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज के सोच की प्रक्रिया की जानकारी [illegible] है। उनकी ये रचनाएँ 'तोता क्यों रोता' संकलन की रचनाओं की तरह चली [illegible], कहीं कठिन। कहीं रहस्य की प्रतीति, कहीं यथार्थ का चित्रण।

आचार्य श्री 'स्वानुभवी' को 'कवि' से ऊपर देखते हैं, सम्भवतः इसीलिए [illegible]' के अन्तर्गत स्पष्ट किया है - 'जहाँ न जाता कवि, वहाँ जाता [illegible]'। उनकी यह धारणा सही भी है। कम से कम अध्यात्म के क्षेत्र में तो इसे [illegible] होगा। बड़ी वस्तु यह कि वे कविता से भी अधिक मौलिकता स्वानुभविता [illegible] है। [illegible], उनके अनुभव का दर्शन पाठक कर पाता! यों जो पाठक उनकी [illegible] सरोकार प्रगाढ़ करता चला जायेगा, वह उनके अनुभव की प्रदर्शनी का [illegible] भी करता जायेगा। देखिये न! पृष्ठ तीन पर उनकी पंक्तियाँ - 'कब तक [illegible] घोलेगा। कब तक चंचल ..... डोलेगा। कब तो इन पर दृग [illegible] इन से सरस बोल वे ...... बोलेगा। उनकी दृष्टि तुला पर। [illegible] सत्ता .... कब तौलेगा।......

[illegible] सीधी - सादी पंक्तियों को कोई ऊपर - ऊपर पढ़ ले तो जाने क्या [illegible], पर यदि कोई इनमें डुबकी लगा दे तो अर्थ का सुन्दरतम छायांकन [illegible] जायेगा -- दुग्ध - कुम्भ में चुपके से जहर घोलने वाले चाहे जिस शहर [illegible] हैं। वात्सल्य को गले से लगाये डोलते लोग भी मिल जाते हैं, पर [illegible] पर शाम हो जाती है, जहाँ मृत्यु, मुक्ति का आभास होने लगता है [illegible] आत्मा ही खड़ी दिखती है, मानों सभी तरफ, सभी ओर, वही एक हो।

[illegible] अर्थ की रेखाएँ बढ़ती जाती हैं, जब उक्त पंक्तियों से झंकार निकलती [illegible] दिखने वाले आदमी को समझने के लिए हिए की आँख से कब निहारा [illegible] व्यक्ति के समक्ष अपने आत्मप्रभाव को कब और कितने अंशों में [illegible] का अनुसरण करेगा? जो श्रेष्ठ्य के साथ चलेगा वही तो अपना [illegible] निर्मल करेगा।'

[illegible], पाठक पढ़ें तल्लीन होकर, अर्थ की केंचुली आपों आप उतरती चली [illegible] पर, पढ़ें - 'सब शास्त्रों का सार यही। समता बिन सब धूल है।' [illegible] करने वाला, आचार्यश्री का मत - मस्तिष्क, स्पष्टोक्ति करता चलता [illegible] है कि जिस व्यक्ति, समाज और देश में समता का भाव नहीं है, [illegible] धूल से अधिक नहीं है।

'[illegible] जाने दो' रचना (पृष्ठ 23) के माध्यम से वे 'भ्रमित चेतना' [illegible] '[illegible] हुई मृत्यु' अधिक ठीक मानते हैं।

आचार्यश्री सूफी सन्तों की तरह श्रृंगार की भाषा लिखकर भी, वैराग्य का पुट बनाये रहते हैं। पृष्ठ ८६ इस कथन को ध्वनित भी करता है - कुटिल कुटिलतम/कज्जल काले/कुन्तल बाल/भाल पर आ/बिखरे हैं/निरे निरे हो, अस्त व्यस्त।' किस लिए? वे स्वतः उत्तर देते चलते हैं - ताकि समुज्वल भाव भूमि / पर। किसी की दृष्टि न पड़ जाय।

कहने का मन्तव्य यह है कि आचार्यश्री की कविता - कौमुदी का अपना एक सुख है, और सुख में संदेश है। बस पाठक की दृष्टि खोजी होनी चाहिए।

आचार्यश्री का समूचा साहित्य अध्यात्म के 'टेक' पर लिखित/शिल्पित है और जैन-दर्शन को लेकर ही स्फुरित है। उस पर जितनी चर्चा की जाय कम है। सर्वांग सुन्दर किताबें कम ही देखने में आती हैं।

हिन्दी - साहित्य के वर्तमान संसार में इस कृति का सही - सही मूल्यांकन होगा, विश्वास है।

8-10-94

सुरेश सरल
२६३, सरल कुटी, गढ़ाफाटक
जबलपुर (म०प्र०)

अनुक्रम

क्रमांक नाम
१ भोर की ओर
२ काश!
३ हौले हौले
४ आगत – स्वागत
५ खो जाने दो
६ आँखों में धूल
७ मेरा सहचर मैं
८ आया दल–दल
९ प्रलय – पताका
१० दृष्टि झुकी चरणों में
११ पीयूष भरी आँखें
१२ हो जाने दो
१३ सो जाने दो
१४ अंतिम माता
१५ भू–चुम्बी द्वार
१६ निर्णय लिया निशा में
१७ चितकबरा
१८ पल पल पलटन
१९ बिजली की कौंध
२० प्यास, पराग की
२१ कदम फूल, कलम शूल
२२ मन्मथ मथनी

२३ सागर – तट

२४ महका मकरन्द

२५ राकेन्दु

२६ पारदर्शक

२७ मन की भूख मान

२८ केली – अकेली

२६ विकल्प / पंछी

३० करुणाई

३१ प्रति – छवियाँ

३२ दर्पण में दर्प न

३३ कब भूलूँ सब?

३४ पक्षपात : पक्षाघात

३५ बोल, मुस्कान

३६ डूबो मत, लगाओ डुबकी

३७ तुम कैसे पागल हो

३८ स्वयं – वरण

३६ भीगे – पंख

४० उषा में नशा

४१ प्राकृत पुरुष

४२ अधर के बोल

भोर की ओर

कब से आ रहा हूँ
अपार सागर में
तैरता तैरता
हाथ भर आये हैं
श्लथ!
नैर्बल्य की अनूभूति
अब ओर नहीं छोर मिले !!

चारों ओर
भ्रमर तिमिर
फैला है
फैलता जा रहा है
चरण चल रहे
साथ आस्था है
साफ रास्ता है
पर
धृति कहती है
अब घोर नहीं
भोर मिले!

□□□

काश !

हे आकाश!
काश!
नहीं देता तू
इस लघुतम सत्ता को
अपने में
अवक़ाश !
अपने पास !!

किस विध सम्भव था?
चिदाकाश का
अप्रत्याशित
सौम्य सुगंधित
मृदुतम विलास
परम विकास !

रूप रसातीत
स्फीत प्रतीत
परम प्रकाश !
हे! महदावास
हे! आकाश!

□□□

हौले हौले

यह यथार्थ नहीं है
इसीलिए
परमार्थ भी नहीं है
आर्त है केवल
पर का आलम्बन
पर का सम्बल !

ऐसी स्थिति में
कैसे उपलब्ध हो
स्वार्थ!
यही एक परिणाम हुआ है
कि
शिर पर ले अघ मटका,
भव वन में मन भटका
चहुँ गतियों में अटका
मिला नहीं सुख घटका

कब तक तू जीयेगा
पराश्रित जीवन
कब तक ना पीयेगा
पीयूष पी बन
संजीवन
जीना क्या ? ना चाहेगा
चिरंजीवन

कब तक पय में
विष घोलेगा
कब तक चंचल
डोलेगा

जहाँ खड़ी है शाम
वहीं खड़े निजशाम!
विगतकाम घनशाम

कब तो इन पर
दृग खोलेगा?
कब इन से सरस बोल वे
बोलेगा ?
उनकी दृष्टि तुला पर
अपनी समग्र सत्ता
कब तौलेगा
कब तो उन के
पीछे पीछे
हौले हौले
हो लेगा !! हो लेगा!! हो लेगा

हो लेगा तो निश्चित है
यह अपना मल सब
धो लेगा ! धो लेगा !! धो लेगा !!!

□□□

आगत स्वागत

समय समय पर
शून्य में से
अनागत का अपना
निरा सन्देश
प्रचारित प्रसारित हो रहा है
गुप्त रूप से !
कि
'ज्ञान रहे'
ऐसा कोई नहीं है
आवास ! मेरे पास !
नहीं पा सकोगे मुझ में
अवकाश! हो विश्वास !
    नहीं कर सकोगे मुझ में
    पलभर भी
    वास ! विलास!
    मेरा कोई विधिरूप जीवन नहीं है
    निषेध की सत्ता से निर्मित
    जीवन जीता हूँ
मेरे पैरों के नीचे
धरती नहीं है
निराधार हूँ/था,
कैसा दे सकता हूँ? निराधार हो
आधार औरों को !

नीचे की ओर लम्बायमान
दण्डायमान
दोनों हाथ
नहीं है मेरे मस्तक पर
अवकाशदाता
आकाश का हाथ
ना है कोई साथ
मैं अनाथ !

चारों ओर निरालम्ब
सब अनाथ
सनाथ बनते हैं
मेरी उपेक्षा करने से
अनाथ बनते हैं
अपेक्षा करने से
मेरा दर्शन किसी को होता नहीं
होता भी हो तो
व्यवहार ! उपचार !

दिव्य ज्ञानी को भी
मेरा साक्षात्कार नहीं
मैं एक अथाह गर्त हूँ
मुझ में भरा है केवल
अभावात्मक आर्त ही आर्त

पिपासा बुझाने
जिस में
आशा झाँकती है
बार! बार!!

खाली हाथ लौटती
निराश हुई आशा की पीठ
अनिमेष निहारता रहता हूँ
यही मेरी विशेषता है
मैं अनागत, नहीं तथागत !

और विगत की घटना
मौन
किन्तु
तुझे इंगित कर रही है
अपने इंगनों से
अरे ! मन !
उसकी चपेट में आकर
मत पिटना
अमित बल को खोकर
अनेक भागों में
मत बँटना !

संवेदन से शून्य है वह
भाव की परिणति
अभाव में परिवर्तित
वह अपना
बन चुका है सपना
असंभव बन चुका है
अनुभव से
उसका नपना !

संभव है केवल
अब उसका
शब्दों से जपना !

जिस जपन की वेला में
अनुभूति का स्रोत
ढक जाता है सहज
अघ के कणों से
अवचेतन के रजोगुणों से
और यही हुआ है
भवों भवों से
युगों युगों से

अरे ! मन
विगत की घटना से
पल भर तो
हट! ना हट ना!! हट ना !!!

विगत में
समता रस से आपूरित
क्लान्ति निवारक
शान्ति प्रदायक
ओ 'घट' ना! ओ 'घट' ना ! ! ओ 'घट' ना !!!
अरे मन
भूल जा
ओ घटना ! ओ घटना !! ओ घटना !!!

इसीलिए हो जा
अरे मन !
विगत से, अनागत से
पूर्ण रूप उपराम !

अन्यथा और कहीं खोजा
सत् चित् आनन्द धाम
यदि अनुभूत होगा
तो वह है निश्चित
एक ललित ललाम
पूर्ण काम !
विरत काम !
आगत ! आगत !! आगत !!!

यही है मुख्य अतिथि
महा अभ्यागत !
सदा जागृत
चिर से अब तक तुझ से
अनपेक्षित है अनादृत ।

प्रतीक्षा से
भिक्षा से
शिक्षा से भी परे
अप्रमत्त ईक्षा की पकड़ में
केवल आता है
आगत ! आगत !! आगत!!!
इसी का आज
स्वागत ! स्वागत !! स्वागत !!!

□□□

खो जाने दो

अरी ! वासना
यथा नाम तथा काम है तेरा
तुझ में सुख का
निवास वास ना !
तुझ में गहराई है कहाँ ?
और मैं
गहराई में उतरने का
हामी हूँ
चंचल अंचल में
केवल लहराई है
तेरे आलिगंन में
मोहन इंगन में
सुख की गन्ध तक नहीं
मात्र सुख की वासना है
जो ओढ़ रखी है तूने
जिस में सारी माया ढकी है
इसलिये इसे
अपनी उपासना में
अनन्त सत्ता में
खो जाने दो
ओ ! वासना !

□□□

आँखों में धूल

ज्ञान ही दुख का
मूल है,
ज्ञान ही भव का
कूल है।
राग सहित सो
प्रतिकूल है,
राग रहित सो
अनुकूल है।
चुन चुन इन में
समुचित तू
मत चुन अनुचित
भूल है ।
सब शास्त्रों का
सार यही
समता बिन सब
धूल है।

□□□

मेरा सहचर मैं

हे अपरिमेय!
अजेय सत्ता !
इस
नादान असुमान को
ऐसी शक्ति प्रदान कर दो
इस में
ज्ञान विज्ञान
प्रमाण भर दो
जागृत प्राण कर दो

लोकालोक
दिव्यालोक
विगतागत का
संभावित का
सिंहावलोकन कर सकूँ
युगपत्
युगों युगों तक
कण कण के
परिचय का
अणु अणु के
अतिशय का
अनुपान कर सकूँ जी भर !

अन्यथा इसमें
ऐसा मान स्वाभिमान
आविर्माण कर दो
जिस से वह
किसी भी काल में

किसी भी हाल में
तन से, मन से
और वचन से
पर का अनुचर
नहीं बने
निज का सहचर
सही बने, अमर बने

आगामी अनन्त काल तक
निजी मान के आस्वादन में
रहे सने! मोद घने !
ओ! अपरिमेय !
अजेय सत्ता

□□□

आया दल - दल

पृथुल नभ मण्डल में
अकाल विप्लव धर्मी
सघन, श्यामल
बादल दल
पिघल पिघल कर
उज्ज्वल शीतल
धवलिम जल में
बदल गया है।

इसे निरख कर
धरती दिल
हिल गया है,
मन में विचार ।
भविष्य का विषय
गहल भाव में ढला
भला बुरा अज्ञात
यह युग
मुझे तिरस्कृत करेगा
पद दलित करेगा
दल - दल आ गया है

□□□

प्रलय पताका

चराचरों का संकुल
चलाचलों का कुल
यह निखिल
खुल, खिल
पल, पल
अविरल अविकल
गल - गल
नव - नूतन
अधुनातन
आकार - प्रकारों में
निर्विकार विकारों में
प्रतिफलित हो रहा है
स्वयं
था/होगा त्रैकालिक

जो रहा है
पर !
इस प्रतिफलन की गोपनता
मोहाकुल व्याकुल चेतन के
आचार-विचारों में
फलित कब हुई है ?
इसीलिए तो
यह साधारण
जन-गण-मन
निर्णय कर लेता है
कि
विशाल निखिल का

आखिर !
स्रष्टा कौन होगा ?
सकल साक्षात्कार
द्रष्टा मौन होगा
वही ईश्वर, अविनश्वर ना !
शेष सब गौण होगा
किन्तु यह निर्णय
सत्य रहित है
तथ्य रहित है
पूर्ण अहित है
केवल कल्पना है
केवल जल्पना है

क्योंकि
चेतन से अचेतन का
उद्भव !
कैसा हो सम्भव!
क्या सम्भव है ?
कभी !
बोकर बीज बबूल
पाना रसाल
रसपूर
भरपूर

और क्या कारण है ?
ये ईश्वर !
किसी को बनाते नर
किसी को बनाते किन्नर
मतिवर, धीवर, वानर

जबकि वे
अदय नहीं हैं
सदय 'हृदय'
अभय निधान
हैं भगवान ।
सबको बनाते !
एक समान
या भगवान
अपने समान
जिसका जैसा हो परिणाम
धर्म-कर्म-काम
तदनुसार ही
ये ईश्वर
इन चराचरों को
दिखाते हैं
नरक निवास
स्वर्ग विलास
नर-पशु-गति का त्रास !

यह कहना भी
युक्ति युक्त नहीं है
कारण !
कर्म-मात्र से काम हो रहा
ईश्वर फिर किस काम आ रहा ?
'माता-पिता तो
सन्तान के कर्ता हैं'
यह धारणा भी
नितान्त भ्रान्त है

केवल ये भी 'विभाव भाव के
काम भाव के '
कर्ता हैं
अन्यथा कभी कभी
कुछेक
सन्तानहीन क्यों ?
वन्ध्या
रोती क्यों ?
त्रिसन्ध्या?

सही बात यह है
कि,
जननी जनकज
रज-वीरज के
मिश्रण-निर्मित
नूतन तन तब धरता है
आयु पूर्ण कर
जीरण शीरण
पूरव तन जब तजता है
निज कृत विधि - फल
पाता प्राणी
अज्ञानी !

यथार्थ में
प्रति पदार्थ में
सृजन शीलता
द्रवण - शीलता

परनिरपेक्ष
शक्ति - निहित है
जिसके अवबोधन में
हित निहित है

इसीलिए
विगत भाव का
विनाश वाला
सुगत - भाव का
प्रकाश वाला
सतत शाश्वत
ध्रौव्य भाव का
विलासशाला
सत् है ।

चेतन हो या अचेतन
तन, मन हो या अवचेतन
सब ये सत् हैं
स्वयं सत् हैं

सत् ही धाता विधाता है
पालक पोषक निज का निज ही
सत् ही विष्णु त्राता है
प्रलय पताका
सत् ही शिव संघाता है ।

इसीलिए अब
तन से, मन से
और वचन से
सत् का सतत
स्वागत है, सुस्वागत है।

□□□

दृष्टि झुकी चरणों में

चपला हरिणी दृष्टि
अबला हठीली
बाहर सरला तरला
भीतर गरला गठीली
ऊपर सौम्य छबीली
सुन्दर
कुटिल कुरूप कटीली
अन्दर
पर ! आज पूर्ण परिवर्तन

प्रतिलोम चाल चलती
यह एक बहाना है
चरण रज सर पर चढ़ाती
मौन कह रही

आज हुआ भला
जीवन को अर्थ मिला
जो कुछ था व्यर्थ, टला
व्यष्टि से दृष्टि हटी
समष्टि का पान करती
गुण - गान करती

करती सक्रिय चरण की **पूजन**
क्रियाहीन को क्रिया मिली
दृष्टि को मिली
चरण शरणा
निरावरणा
निराभरणा ।

□□□

पीयूष भरी आँखें

अपरिचित होकर भी
परिचित सी लगती है
अतल सागर सत्ता से निकली
इधर
मेरी ओर एक
सजीव लहर आ रही है
हर क्षण, हर पल
अश्रुत-पूर्व
श्रुतिमधुर गीत
गहर गहर कर गा रही है
वासना की नहीं
उपासना की रूपवती मूर्ति
मेरे लिए
पीयूष भरी
आँखें लिए
जहर नहीं
महर ला रही है
देखो ना !
मोह मेघ की महाघटायें
दुर्वार घूँघट
पूरी शक्ति लगा
चीरती चीरती
चिदानन्दिनी
शरद चाँदनी
नजर आ रही है !

□□□

हो जाने दो

सत्ता पलट तो गई है
भोग का वियोग हुआ
योग का संयोग हुआ
किन्तु उपयोग का !
उपयोग कहाँ हुआ?
भोक्ता पुरुष ने
उपयोग का उपभोग नहीं किया
मात्र परिधि पर
परिणाम हुआ है बस !
अभी केन्द्र में
सूम् साम है, शाम है !
हे घनशाम तुम सा अनन्त
इसे भी
हो जाने दो !

□□□

सो जाने दो

ओ री ! ललित लीलावती
चलित शीलावती
भ्रमित चेतना !

जब से तेरा
क्रीड़ास्थल
बाहर से आ भीतर बना है
तबसे
पुरुष की पीड़ा
और घनीभूत हुई है

मानो मस्तिष्क में
काट रहा हो
पड़ा पड़ा एक कीड़ा
इसलिए निवेदन है
अब पुरुष को
सानन्द अनन्तकाल तक
सो जाने दो !

□□□

अंतिम माता

ओ माँ !
सार्वभौमा
भली कहाँ गई तू !
चली !
इसे विसार छोड़कर
निराधार
        इधर यह
        भटक रहा है
        इधर उधर गली गली
        तुझे ढूँढता कहाँ है वह
        गूढ़ता निगूढ़ता
अकेला बावला बन
जिधर जिधर
दृष्टिपात किया
उधर उधर
शून्य ! शून्य !! शून्य !!!
केवल शून्य !

क्या शून्य में लुप्त गुप्त हुई
किधर गई किधर देखूँ?
अधर में मुझे मत लटका !
हे ! अधर पथ गामिनी
मौन मुस्कान
कम से कम
दिखा दे
अधर पर

अमूर्त केन्द्र की ओर
अमूर्त इन्द्र को
गतिमान प्रगतिमान
होने की
विधि दिखा दे
या

मौन सांकेतिक
भाषा में वह
लिखा दे
हे अनन्त की जननी !
अनन्तिनी !
अनन्तकाल के लिए
अपने अविचल अंक में
आश्रय दे
इसे बिठा ले

यह समय, अभय हो
पल्यंक - आसन लगा
उस अंक में
शीतल शशांक - सा
पर ! आशंक
आत्माभिभूत हो सके

इस में अनावरण का वातावरण
आविर्भूत हो सके
पूतपना
प्रादुर्भूत हो सके।
हो सके।
इतनी कृपा कर देना ।

कौन सा पथ है तेरा
जिस पथ पर चिन्हित
पद चिन्हों को
कैसे चीन्हूँ ?

यह पूरा श्लथ है
अंश !
अपने वंश से
अज्ञात ! परिचित कहाँ है ?
अनाथ है
अपने अंश को
कम से कम
अपने वंश का
ज्ञान करा दे !

अनुमान करा दे माँ !
हे ! अंशवती !
हे! हंसमती !
सोमाँ !
ओ माँ !
ओ ! चाँदनी !
चिदानन्दिनी !

यह चेता
चातक !
चारु चरित से
चलित विचलित
हो गया है
चिर से
इसे कब फिर से! वह

शरद धवल
पयोधर सी
पावन पूत
हे ! पयोधरा !
पयोधर पिला

पूत को पुष्ट नहीं बनाओगी
अभिभूत !
पूत कब बनाओगी ?
हे ! विमल यशोधरा
हे ! पयोधरा
भाँति भाँति के भावों से
बार बार यह
बालक, माँ !

बाधित न हो
रहे अबाधित
सदा भावित
शीतल अंचल में
छुपा ले इसे !
भोले बालक को
हे ! जगदम्बा!

बहु भावों से
भावित भाल तेरा
कृपा - पालित कपाल तेरा
सब इंगनों का
अंकन ! मूल्यांकन !
कठिनतम कार्य है माँ !
यह निर्बल मन मेरा